क्यों टूटते हैं तारे?

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

आपने कभी न कभी टूटता तारा अवश्य देखा होगा। अचानक हवा में एक जलती हुई लकीर नज़र आती है और पलक झपकते ही खत्म हो जाती है। वैज्ञानिक प्राचीन काल से ही टूटते तारों का अध्ययन करते आए हैं और कई सिद्धांत प्रस्तुत हुए हैं।

सौर मंडल में मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच काफी बड़ा फासला है। सन 1801 में इस क्षेत्र में खगोल वैज्ञानिकों द्वारा एक छोटा पिंड खोजा गया था जो सूर्य की परिक्रमा कर रहा था। उस समय से अब तक इस प्रकार के डेढ़ हज़ार से अधिक पिंडों की खोज की जा चुकी है। इन पिण्डों को क्षुद्र ग्रह (ऐस्टेरॉयड) कहा जाता है। ये क्षुद्र ग्रह समय-समय पर एक दूसरे से टकराते रहते हैं। टकराने के कारण ये सूक्ष्म टुकड़ों में टूटते रहते हैं।

ये सूक्ष्म टुकड़े उल्काणु (मीटियोराइट) कहे जाते हैं। ये उल्काणु विभिन्न दिशाओं में बिखर जाते हैं। इनमें से कुछ टुकड़े विभिन्न ग्रहों तथा अन्य ब्रह्माण्डीय पिंडों से टकरा सकते हैं। ऐसे टकराव के निशान चांद, पृथ्वी तथा मंगल की सतह पर पाए गए हैं। ये निशान विभिन्न प्रकार के गर्त (क्रेटर) के रूप में मौजूद हैं।

उपरोक्त सूक्ष्म टुकड़े या उल्काणु जब पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं तो वायुमंडल के अणुओं से घर्षण के कारण उनमें से अधिकांश उल्काणु तेज़ प्रकाश के साथ जल उठते हैं जिन्हें उल्का कहा जाता है। यह ज्वलन प्रकाश की एक लकीर के रूप में दिखाई पड़ता है। सामान्य बोलचाल में इसे टूटता तारा भी कहा जाता है। कुछ लोग इसे देखना शुभ/अशुभ मानते हैं।

अधिकांश उल्काओं का प्रकाश तो सिर्फ चंद सेकंड ही दिखाई पड़ता है हालांकि प्रकाश की यह लकीर अधिक से अधिक एक मिनट तक दिखाई पड़ सकती है। प्रकाश की यह रेखा उल्का द्वारा वायुमंडल के अणुओं को आयनीकृत करने के कारण दिखाई पड़ती है। अधिकांश उल्काएं भू-सतह से लगभग 100 किलोमीटर ऊपर दिखाई पड़ने लगती हैं तथा भू-सतह से 60-65 किलोमीटर की ऊंचाई तक पहुंचते-पहुंचते लुप्त हो जाती हैं। अधिकांश उल्काओं का वेग लगभग 40 किलोमीटर प्रति सेकंड होता है।

ऐसे अधिकांश सूक्ष्म टुकड़े तो उल्का के रूप में वायुमंडल में ही जलकर भस्म हो जाते हैं, परन्तु कुछ बड़े आकार के टुकड़े धरती तक पहुंचने में सफल हो जाते हैं। धरती पर गिरने वाले इन टुकड़ों को उल्का पत्थर कहा जाता है।

उल्काओं का अध्ययन मानव प्रागैतिहासिक काल से ही करता आ रहा है। भारत के प्राचीन वैज्ञानिक वराहमिहिर द्वारा लिखित ग्रंथ *वृहत् संहिता* के उल्का लक्षणाध्याय में इस विषय की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। इस पुस्तक में उल्का के पांच भेद बताए गए हैं - धिष्णया, उल्का, अशनि, बिजली तथा तारा। धिष्णया पतली छोटी पूंछ वाली, प्रज्वलित अग्नि के समान तथा दो हाथ लम्बी होती है। उल्का विशाल सिर वाली, साढ़े तीन हाथ लम्बी और नीचे की ओर गिरती हुई दिखाई देती है। अशनि चक्र की तरह घूमती हुई, ज़ोर की आवाज़ करती हुई पृथ्वी पर गिरती है। बिजली विशाल आकार की होती है जो तड़-तड़ आवाज़ करती हुई पृथ्वी पर गिरती है। तारा एक हाथ लम्बी तथा तेज़ प्रकाश करती हुई आकाश में एक ओर से दूसरी ओर जाती दिखाई देती है।

उल्काओं तथा क्षुद्र ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बंध में वैज्ञानिकों का विचार है कि अतीत में सौर मंडल का कोई ग्रह टूटकर बिखर गया था जिसके टुकड़े क्षुद्र ग्रह अथवा उल्काओं के रूप में परिवर्तित हो गए। कुछ अन्य वैज्ञानिकों की धारणा है कि अतीत में सौर मंडल के कोई दो ग्रह आपस में टकरा गए जिसके कारण दोनों ग्रह नष्ट हो गए। इनके नष्ट होने से उत्पन्न टुकड़े आज हमें क्षुद्र ग्रहों तथा उल्काओं के रूप में दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इस परिकल्पना को कुछ वैज्ञानिकों ने संतोषजनक नहीं माना है। उनके मतानुसार मंगल तथा बृहस्पति के बीच इतना बड़ा फासला है कि वहां दो ग्रहों के

आपस में टकराने की संभावना नगण्य मालूम पड़ती है। कुछ वैज्ञानिकों ने एक तीसरी परिकल्पना प्रस्तुत की है। इस परिकल्पना के अनुसार क्षुद्र ग्रहों तथा उल्काओं का निर्माण सौर मंडल के निर्माण के साथ ही हुआ। आजकल अधिकांश वैज्ञानिक इसी परिकल्पना के समर्थक हैं।

धरती की सतह पर पाए गए अनेक उल्का पत्थरों के विश्लेषण से पता चला है कि उनमें लोहा तथा निकल धातुएं एवं कई प्रकार के सिलिकेट खनिज पाए जाते हैं। ये सिलिकेट खनिज उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार के सिलिकेट खनिज बेसाल्ट नामक ज्वालामुखीय (आग्नेय) चट्टान में पाए जाते हैं। कुछ उल्का पत्थर तो शुद्ध लोहे के बने होते हैं। ये उल्का पत्थर देखने में ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो पिघले लोहे को उच्च दाब पर धीरे-धीरे ठंडा किया गया हो। इस तथ्य के आधार पर कुछ वैज्ञानिक पहले मानते थे कि उल्काओं का निर्माण ऐसे ग्रह के टूटकर बिखरने से हुआ है जिसके केन्द्रीय भाग में लोहा मौजूद था।

परन्तु हाल में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि इस प्रकार का लोहा कम दाब तथा कम तापमान पर भी निर्मित हो सकता है। कुछ उल्का पत्थरों में मौजूद रेडियोधर्मी खनिजों के विश्लेषण से पता चला है कि इनका निर्माण लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुआ था।

अभी तक किए गए विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि पृथ्वी की ओर आने वाली अधिकांश उल्काएं तो पृथ्वी के वायुमंडल से गुज़रते समय ही जलकर राख हो जाती हैं या वाष्पीभूत हो जाती हैं। हर 24 घंटे में औसतन लगभग दो करोड़ उल्काएं पृथ्वी के वायुमंडल से गुज़रते समय जल जाती हैं। कभी-कभी एक घंटे में लाखों की संख्या में उल्काएं पृथ्वी के वायुमंडल में जलकर भस्म होती हैं। इस घटना को उल्कापात कहा जाता है। ऐसी घटना हर साल लगभग एक ही समय पर घटती है।

उल्काएं कृत्रिम उपग्रहों के लिए काफी खतरनाक साबित हुई हैं। संयोगवश यदि उल्काएं इन उपग्रहों से टकरा जाएं तो उपग्रह नष्ट हो सकते हैं। कभी-कभी किसी उल्का का टकराना काफी प्रलयंकारी साबित होता है। ऐसी एक घटना 30 जून 1908 को घटी थी। उस दिन रूस के साइबेरिया क्षेत्र में उल्कापात हुआ था। इस उल्कापात की आवाज़ उस स्थान से लगभग 600 किलोमीटर दूर तक सुनी गई थी। साथ ही लगभग 75 किलोमीटर के दायरे में स्थित भवनों के शीशे टूट गए थे। इसके अलावा लगभग 30 किलोमीटर के क्षेत्र में पेड़-पौधे उखड़ गए थे और असंख्य जीव-जन्तु मारे गए थे। साइबेरिया में ही सन 1947 में पहाड़ी क्षेत्र में उल्कापात हुआ था।

प्रत्येक उल्का अपने साथ बाह्य अन्तरिक्ष से पत्थरों एवं धूल कणों की कुछ न कुछ मात्रा पृथ्वी पर अवश्य लाती है। अनुमान है कि प्रतिदिन लगभग दस लाख किलोग्राम पदार्थ उल्काओं द्वारा बाह्य अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर लाया जाता है। यह पदार्थ धूल कणों के रूप में होता है। ऐसे धूल कण ऊपरी वायुमंडल तथा ध्रुवों पर पाए गए हैं। परन्तु पृथ्वी के अपने द्रव्यमान की तुलना में उल्काओं द्वारा लाए गए पदार्थ का द्रव्यमान नगण्य है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत 150 रुपए

संस्थागत 300 रुपए

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।